Bodhi-Path Year 2022 July Issue Volume 23 Page No 12-19

# बुद्ध का सामाजिक न्याय में महत्वपूर्ण योगदान

**शशी बाला अर्चना**

बौद्ध अध्ययन विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मो. 9211842150

ई–मेल– shashisha9716@gmail.com

यह सत्य प्रकृति के नियमों की तरह अटल है कि किसी दार्शनिक सिद्धान्त, धार्मिक विचारधारा एवं अन्य विचारों का जन्म शून्य से नहीं होता बल्कि उसका आविर्भाव मानवीय मनस की उपज होता है। मानवीय मनस के जन्म एवं सवर्द्धन में मनुष्य का परिवेश एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी भूमिका का निर्वाह करता है।

मनुष्य का दूसरा सांस्कृतिक परिवेश होता है। इस परिवेश के अन्तर्गत मनुष्य की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ उसके मानसिक विकास में महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी भूमिका का निर्वाह करती है। इन सांस्कृतिक उपलब्धियों के अन्तर्गत, सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं कला संबंधी संस्थाओं का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। ये सम्पूर्ण संस्थाएँ मिलकर एक सांस्कृतिक परिवेश का सृजन करती है, और यह परिवेश प्रत्यक्ष एवं परोक्ष और सकारात्मक एवं निषेधात्मक प्रभाव किसी भी सिद्धान्त पर अवश्य डालते हैं इसी परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक परिवेश का, बुद्ध के समाज दर्शन के सृजन पर सीधा प्रभाव पड़ा।

बुद्ध के प्रादुर्भाव के पूर्व का युग सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था इस युग में वैदिक सांस्कृतिक  की मान्यताओं में शिथिलता प्रारंभ हो गई थी जिसके फलस्वरूप श्रमण संस्कृति एक सफल एवं प्रभावकारी संस्कृति के रूप में उभर कर सामने आई और उस समय उसकी गहरी नींव पड़ चुकी थी। बुद्ध का समय आते–आते वैदिक संस्कृति की नींव हिल गई थी और उसके बारे में अनेक विद्धान क्या, कैसे, क्यों आदि प्रश्नवाचक चिन्ह लगाने लगे थे तभी बौद्ध दार्शनिकों का भयंकर आक्रमण भी होने लगा था जिसके फलस्वरूप श्रमण–संस्कृति का अत्यन्त विकास एवं संक्रमण प्रारंभ हुआ।

**सामाजिक क्षेत्र** में वैदिक संस्कृति के द्वारा प्रतिस्थापित वर्ण व्यवस्था, जातिप्रथा और वर्ण–आश्रम धर्म का गंभीर एवं व्यापक रूप से श्रमणों के द्वारा विरोध किया जाने लगा, और उनके द्वारा समानता के सिद्धान्त को प्रस्तुत

किया गया। इस बात का बुद्ध के समाजदर्शन पर अत्यंत गहरा प्रभाव पड़ा और बुद्ध ने मनुष्य की समानता के विषय में वैज्ञानिक तार्किक एवं व्यवहारिक तर्क प्रस्तुत किए जो आज तक भी मानवीय मूल्यों से ओत–प्रोत है।

**राजनीतिक दृष्टि** से गणतंत्रात्मक पद्धति का इस युग में प्रचलन हो चुका था और कुछ राज्यों में यह व्यवस्था लागू भी थी। इस व्यवस्था का बुद्ध के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। बुद्ध इस व्यवस्था के केवल सैद्धांतिक प्रशंसक ही नहीं थे बल्कि उन्होंने अपने संघ की स्थापना गणतंत्रात्मक मूल्यों अर्थात् समानता स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय पर आधारित की थी।

**आर्थिक दृष्टि** से वैदिक संस्कृति में एक वर्ग के द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण का प्रावधान किया था। जिसका विरोध बुद्ध के प्रादुर्भाव से पूर्ण श्रमणों द्वारा किया जाने गया था। धार्मिक एवं दार्शनिक क्षेत्र में वैदिक मान्यताएँ अंधविश्वासों पर निर्भर करती थी, बुद्ध ने उनका विरोध किया एक कटु आलोचना की।

## बुद्ध से पूर्व सामाजिक व्यवस्था एवं न्याय

बुद्ध से पूर्व सामाजिक व्यवस्था दो प्रकार की थी पहले वह व्यवस्था कर्म के आधार पर थी बाद में वह जन्म के आधार पर हो गई। लोगों की दृष्टि के अनुसार स्वयं 'सृष्टिकर्ता' ने वर्णो के अनुसार समाज का वर्गीकरण करके उनके कर्मो का निर्धारण किया है। इस वैदिक व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इसी क्रम में आते थे इस क्रम में ब्राह्मण सर्वोपरि था श्रमणों ने इस क्रम में परिवर्तन कर दिया उसके स्थान पर श्रत्रिय, ब्राह्मण तथा गृहपति (वैश्य)[1] उच्च जाति माने जाने लगे। सामान्यतः बुद्ध के युग में ब्राह्मणों और क्षत्रियों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। इस युग में अंतर्जातीय खान–पान संबंधी विचारों में एकरूपता नहीं पाते है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में खान–पान के सम्बन्ध में अस्पृश्यता का जन्म हो चुका था, क्योंकि[2] आपस्तंब के विचार में ब्राह्मण स्नातक को ब्राह्मणीत्तर जातियों के गृह में भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। लेकिन आजकल में किसी भी जाति के हाथ का भोजन ग्रहण किया जा सकता था। क्षत्रियों में श्रेष्ठतम होने की भावना पनपे का कारण था कि वे ही तत्कालीन समाज में एक मात्र क्षत्रिय ही राजत्व का उपभोग करने के अधिकारी थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही वर्ग उस समय सम्मान के अधिकारी थे और उनके बच्चों को सम्मान के साथ शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था पालि त्रिपिटक से पता चलता है कि वर्ण व्यवस्था के अतिरिक्त एक नया वर्ग सामने आया जिसमें निम्न जातियाँ थी जैसे चंडाल,

[1] सिंह मदन मोहन (1972), पृष्ठ 16 बुद्ध कालीन समाज और धर्म
[2] सिंह मदन मोहन (1972), पृष्ठ 18 बुद्ध कालीन समाज और धर्म

नेषाद, पुक्कुस, वेण तथा रथकार। इन जातियों को नीच कुलोत्पन्न कहा जाता था और हमेशा ही तिरस्कृत रहते थे। हीन जातियों में चांडाल की स्थिति अत्यंत सोचनीय थी। ये नगर की सीमा से बाहर रहते थे ये लोग अस्पृश्य एवं अदर्शनीय थे। इनका शहर में प्रवेश वर्जित था। हीन जातियों के साथ–साथ दास प्रथा भी प्रचलित थी जो वैदिक काल से चली आरही थी। दासों को खरीदा व बेचा जाता था और उन्हें देप दृष्टि से देखा जाता था। अंगुत्तर निकाय में वर्णन मिलता है कि दासों के साथ बड़ा ही क्रूरतापूर्ण व्यवहार स्वामियों द्वारा किया जाता था।

**राजनीतिक तत्व–** बुद्ध से पूर्व राजनीतिक वातावरण व अवस्था का प्रभाव बोद्धदर्शन पर अवश्य पड़ा। अंगुत्तर निकाय के चार स्थानों और ललित विस्तार के तीसरे अध्याय में उल्लेखित है कि सम्पूर्ण जम्बूद्वीप अनेक छोटे–छोटे राज्यों में बंटा था जैसे अग, मगध, काशी, कोशल, वज्जी, मल्ल, चेदी, वत्स, वुरु, पंचाल, मतस्य, सौर–सेन, अस्मक, अवती, गंधार, कम्बोज आदि। उत्तर भारत में कुछ गणराज्य भी थे जैसे कपिलवस्तु, शाक्य, पावा, कुशीनगर के मल्ला वैशाली, लिच्छवी, मिथला, विदेह, रामगाय,, अल्लकप्प केरूपुत्त, कलिंग और पिप्पली, भर्ग आदि। बुद्ध ने तत्कालीन समय की राजनीति का समीप से अवलोकन किया तो ये कह सकते है कि सिद्धार्थ के गृह–त्याग की घटना में शाक्यसंघ की कलेश का महत्वपूर्ण योगदान था।

## बुद्ध के समाजदर्शन के प्रमुख आधार स्तम्भ

बुद्ध के युग में अनेक धार्मिक विश्वास एवं दार्शनिक मत प्रचलित थे, लेकिन मुख्यतः उस युग में वैदिक समाजदर्शन का प्रचलन था, जिसके कारण सामाजिक मूल्यों में गिरावट आ गई थी। महावीर ने समाज के सर्वागीण विकास के लिए चातुर्याम पर आश्रित समाजदर्शन की स्थापना की जिसमें हिंसा न करना, चोरी न करना, झूठ नहीं बोलना, अपरिगृह रखना एवं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना आदि। इस युग में पूरणकाश्यप, मक्खलीगोसाल, अजित के सकम्बली, पकुघकच्चायन और संजय बेलहिपुत्व जैसे अनेक प्रभावशाली दार्शनिक थे। बुद्ध का समाजदर्शन अत्यंत क्रांतिकारी था वैदिक धर्म की जो मान्यताएँ व सिद्धांत थे उनके सामने बुद्ध दर्शन के माध्यम से चुनौतियाँ खड़ी कर दी थी और उस समय सामाजिक मूल्यों को परिवर्तित कर दिया था।

– बुद्ध के समाजदर्शन का मुख्य आधार उनका धर्म है और धर्म में ही नैतिक मूल्यों का समावेश रहता है। मन के मैल को धोकर उसे निर्मल बनाना धर्म का कार्य है।

– बौद्ध धर्म के समस्त समाज दर्शन का आधार प्रज्ञा, शील, करुणा और मैत्री है। वैसे तो बौद्ध धर्म का तात्पर्य जीवन का मार्ग है लेकिन इस

जीवन के मार्ग पर चलकर ही बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाया की प्राप्ति की जा सकती है।

– मनुष्य का कल्याण और सुख, बुद्ध के समाजदर्शन का केन्द्र बिन्दु और दार्शनिक धुरी है। मानव जीवन से समस्त प्रकार के दुःखों का अंत करना ही बुद्ध की मुख्य समस्या थी।

– बुद्ध ने वैदिक समाज दर्शन का विरोध किया था क्योंकि इसमें मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र नहीं और उसका उत्तरदायित्व समाप्त होता जाता है। बुद्ध ने ऐसा नीतिशास्त्र प्रदान किया जिसमें ईश्वर आत्मा आदि काल्पनिक प्रत्ययों का कोई स्थान ही नहीं था।

– बुद्ध के धर्म का आरंभ पंचशील से होता है। पंचशील बुद्धधर्म का मूल आधार है। जिसमें, हिंसा, चोरी, व्याभिचार, झूठ बोलना व मादक द्रव्यों से दूर रहने की बात कही गई है।

– बुद्ध का आष्टांगिक मार्ग जिसका अनुशीलन कर मनुष्य दुःखों का अंत कर सकता है। इन्हें हम तीन मार्गों में विभाजित कर सकते है। ज्ञान–सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि इन सभी प्रज्ञाओं का पालन करने से भी समाज एक दुःख रहित समाज होगा।

– बुद्ध का समाज दर्शन निम्न नैतिक मूल्यों पर निर्भर करता है क्योंकि बुद्धदर्शन आत्मा व ईश्वर का खण्डन करता है इसलिए बुद्धदर्शन के नीति शास्त्रों का स्रोत मनुष्य व उसका समाज ही है। बुद्ध के समाज दर्शन का सर्वोच्च साधन मानव कल्याण है।

– बुद्ध के नैतिक मूल्य धर्म से भिन्न नहीं वरन धर्म के अभिन्न भाग है। बुद्ध के धर्म को नैतिक मूल्यों से भिन्न और नैतिक मूल्यों को धर्म से भिन्न नहीं देखा जा सकता है।

– **स्वतंत्रता–** बुद्ध केवल मार्ग दाता थे। मोक्ष दाता नहीं। इस लिए बौद्धधर्म के नीतिशास्त्र के अनुसार कर्म करने का संपूर्ण एवं निरपेक्ष उत्तरदायित्व मनुष्य का ही होता है न कि किसी ईश्वर का। मनुष्य अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह तभी कर सकता है जब वह पूर्ण स्वतंत्र हो इसलिए मनुष्य को कर्म करने की पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन के शब्दों में[3] ''बुद्ध भारत के सबसे बड़े जनवादी महापुरुष थे।'' बुद्ध का झुकाव ज्ञान पर बुद्धिवाद की ओर

[3] सांस्कृत्यायन राहुल, भगवान बुद्ध (1956), पृष्ठ 104

अधिक था। बुद्ध को प्रजातंत्र–प्रणाली अतिप्रिय थी क्योंकि मनुष्य को स्वतंत्रता का अधिकार देती। बुद्ध ने अपने संघ का निर्माण गणतांत्रिक आधार पर किया। बुद्ध ने बहुमत को ऊपर रखने को कहा क्योंकि बहुसंख्यक जानने के लिए वोट देने का अधिकार था। बुद्ध का अनित्य अनात्म दुःख का दर्शन ही बुद्ध के जनतंत्र के स्त्रोत है। बुद्ध दर्शन ही जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है।

**आर्थिक तत्व–** प्राचीन काल में समाज वर्ण व्यवस्था पर ही आधारित थी। बौद्ध युग आते–आते शूद्र वर्ण के अंतर्गत अनेक जातियाँ शामिल हो गई थी। इस वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्गो की आर्थिक स्थिति संतोषजनक थी इनको पढ़ने लिखने का अधिकार था चल–अचल सम्पत्ति रखने का अधिकार था। अधिकांशतः शूद्र सेवक थे जो मजदूरी का कार्य करते थे ज्यादातर शूद्र कृषकों का कार्य करते थे उनको मजदूरी बहुत ही कम मिलती थी उनकी अपनी जमीन नहीं होती थी इनकी आर्थिक स्थिति सोचनीय थी उनके पास अपना कुछ भी नहीं होता था। सबसे जर्जर स्थिति चांडाल जाति के लोगों की थी वे नगर के बाहर रहते थे और उनकी सम्पत्ति के नाम पर मिट्टी के बर्तन और गधे होते थे। वे लोग मृतकों के कफन पहनते थे समाज में इधर–उधर घूमते रहते थे। चाण्डाल जाति में जन्म का अर्थ था जीवन में सबसे बड़े अभिशाप का भागी बनना। बुद्ध के ऊपर इन सब अमानवीय कृत्यों का गंभीर प्रभाव पड़ा था। बुद्ध को आर्थिक शोषण पसंद नहीं था। आर्थिक अभावों के कारण वे समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय और शोषण रहित, समाज की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। इस दयनीय स्थिति का बुद्ध के समाज दर्शन पर गंभीर गहरा प्रभाव पड़ा। बुद्ध ने अनुभव किया कि आर्थिक विषमताओं के कारण लोग मानवीय मूल्य की और अग्रसर नहीं हो रहे है। इसलिए सभी आर्थिक बन्धनों को तोड़कर अपने धर्म की नींव साम्यवादी ठाँचे पर रखी, भिक्खु रूप में, व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती और न वहाँ किसी भी प्रकार की कोई जाति भेद था।

**धार्मिक तत्व–** भारतीय संस्कृति, आदिकाल से धर्म प्रधान रहीं है। आर्य तथा आर्योत्तर संस्कृतियों के संपर्क ने भारतवासियों की धर्म–निरपेक्षता को पहले की अपेक्षा अधिक उदार बना दिया। आर्यो के अभ्युदय के पूर्व जो धार्मिक आस्थाएँ एवं मान्यताएँ एवं मान्यताएँ प्रचलित थी उनमें परिवर्तन करके उन्हें नवीन रूप प्रदान किया गया था। अर्थवेद युग में ऐसे धार्मिक विचारों, मान्यताओं, आस्थाओं और व्यवहारों को मान्यता मिली जो पूर्वकाल में अमान्य माने जाते थे। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार वैदिक धर्म की मान्प्यताओं[4] एवं आस्थाओं में,

[4] अम्बेडकर बी.आर. अनु. मदत आनन्द कौसल्यायन, भगवान बुद्ध एवं उनका धर्म (1972), पृष्ठ 684

''यत्र देवताओं को सम्बोधन करके की गई प्रार्थनाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस प्रकार जहाँ एक ओर समाज में निम्नवर्ग के धार्मिक व्यवहार को मान्यता देकर धर्म के व्यापक रूप प्रदान किया वहीं धर्म की जटिलता के कारण संकुचित विचारधारा पनपने लगी। बुद्ध के युग में 62 बासठ सम्प्रदाय थे। इन सभी को बुद्ध ने मिथ्यादृष्टि कह कर आलोचना की थी। वैदिक धर्म की समस्त मान्यताएँ आस्थाएँ एवं कर्मकाण्ड प्रज्ञा की अपेक्षा अंधविश्वासों पर निर्भर करते थे इसलिए बुद्ध ने[5] ''धार्मिक संस्कारों तथा यज्ञ आदि करने को ''आत्मा के मोक्ष का साधन नहीं माना। बुद्ध को धार्मिक यज्ञों में बलि देना पसंद नहीं था। उन्होंने ऐसे यज्ञों को निषेद ही नहीं कराया बल्कि कई यज्ञों में जाकर उन्हें बन्द करवाया और पशुओं को जंगल में छुड़वाया। बुद्ध के अनुसार पाँच यज्ञ है जो सभी को करने चाहिए (1) माता–पिता की पूजा सत्कार करना, (2) पत्नी–बच्चे घर के दास–दासियों का आदर सम्मान करना, (3) श्रमण, ब्राह्मणों का आदर सत्कार करना, (4) हरे–भरे पौधों को यज्ञों के लिए नहीं काटना, (5) बेकारी का नाश करना सच्चा पंचम यज्ञ है। इससे सारे समाज को फायदा होगा।

**समानता–** ईसा मसीह ने अपने आपको ईश्वर का बेटा कह कर ईसाई धर्म में अपना विशेष स्थान बना लिया था। इसी प्रकार इस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद साहब ने खुदा के द्वारा भेजा गया कहकर इस्लाम धर्म में अपना विशेष स्थिति बना ली थी। बुद्ध ने कभी शुद्धोधन और महामाया का प्राकृतिक पुत्र ही माना और कहा हम सभी समान है। वे किसी भी व्यक्ति में भेद नहीं करना चाहते थे इसलिए धर्मशासन में अपने लिए कोई विशेष स्थान सुरक्षित नहीं रखा। धर्म को अपने तेज से जीवित रहना चाहिए धर्म ही धर्म का उत्तराधिकारी है यदि धर्म को मानवीय अधिकारों पर निर्भर रहने की आवश्यकता है तो वह धर्म नहीं है।

बुद्ध ने समानता के सिद्धान्त को केवल अन्य लोगों के ऊपर लागू नहीं किया बल्कि उन्होंने स्वयं को भी अपवाद नहीं माना, ''तथागत ने जितने भी नियम भिक्खु संघ के लिए बनाए थे स्वेच्छा से उन सभी को अपने ऊपर भी लागू किया। भिक्खु एक ही बार भोजन ग्रहण कर सकते है– यह नियम अन्य सभी के साथ 'तथागत' को भी स्वीकृत था। भिक्खुओं के पास निजी सम्पत्ति नहीं होनी चाहिए यह नियम सभी के साथ तथागत पर लागू था। बुद्ध मानव मात्र के लिए समानता का प्रचार करते थे जोकि धार्मिक, दार्शनिक एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। बुद्ध हमेशा जातिवाद के विरोधी थे क्योंकि जातिभेद समाज में असमानता को जन्म देती है और यह बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के मार्ग में बाधक सिद्ध होगा। बुद्ध ने अपने धर्म में बिना जाति धर्म के भेदभाव के, निर्धन धनी रानी, महतरानी आदि को प्रवज्जा

[5] सिंह, मदन मोहन, बुद्धकालीन समाज और धर्म (1972), पृष्ठ 26

देकर समानता का उदाहरण प्रस्तुत किया। बुद्ध के समय में स्त्रियों की दशा बहुत ही सोचनीय थी लेकिन बुद्ध ने अपने संघ में स्त्रियों को प्रवज्जा देकर भारत का इतिहास परिवर्तित कर दिया। जीवन भर बुद्ध समाज में भेदभाव जातिभेद, समाप्त करके समानता की स्थापना करने का प्रयास करते रहे।

**भ्रातृत्व–** डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, ''भगवान बुद्ध जातिवाद के सबसे बड़े विरोधी थे। वे समानता के सबसे बड़े समर्थन थे। इससे भ्रातृत्ववाद का आना आवश्यक है। जो धर्म बहुजन हिताय–बहुजन सुखाय का सर्वोच्च मानकर चलता है तो भ्रातृत्व होना स्वाभाविक है। बुद्ध के धर्म के अनुसार सभी प्रकृति के पुत्र है। इसी कारण सभी में भाईचारा होना चाहिए। इस स्थिति में मैत्री मूल्य की प्राप्ति हो सकेगी।

बुद्ध ने भ्रातृत्वभाव की स्थापना और उसे सशक्त बनाने के लिए कहा, ''तुम बुद्ध धर्म और संघ का आश्रय लेकर अपने परिश्रम से अपने तथा औरो के दुःखों का नाश करो दुनिया का दुःख दूर करो। बुद्ध ने बताया धर्म का अनुशीलन भ्रातृत्वभाव को सशक्त बनाता है। इसके लिए ईर्ष्या, मोह, लोभ, क्रोध आदि को मानसिक वासनाओं को त्यागना अनिवार्य है। उसी अवस्था में भ्रातृत्ववाद की स्थापना हो सकती है यह कार्य दुःखों को कम करने में प्रभावकारी प्रयास होगा।

**निष्कर्ष–** सामाजिक न्याय और शोषण रहित समाज का सपना भगवान बुद्ध का था उसी के तहत बुद्ध धर्म मानव–जीवन में व्याप्त दुःख को कम करके उसे समाप्त करने का प्रयास था। प्रथम आर्य सत्य के तहत कहा दुःख ही जीवन है, जन्म, मरण, बुढ़ापा, शोक, रूदन ये सभी दुःख है। मन की खिन्नता, हेरानी भी दुःख है। इच्छाओं की पूर्ति न होना भी दुःख है। बुद्धकालीन समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में विभाजित था। अनुलोम–प्रतिलोम विवाहों के कारण बहुत सी जातियाँ बन गई थी जिन्हें निम्नकोटि की समझा जाता था उन्हें पशुओं के बराबर रखा था पहले से ही दास वर्ग चला आ रहा था जिसकी स्थिति बहुत ही दयनीय थी अधिकार के नाम पर वे सभी शून्य थे।

उस युग में नारी समाज की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय, सोचनीय, नाटकीय व पाशवसिक थी। मनु ने समाज में स्त्रियों को पुरुषों के अधीन होना चाहिए और उन्हें कभी स्वेच्छाचारी न बनने दे। स्त्री को सर्वथा स्वतंत्र रखना योग्य नहीं है। गीता में वैश्य स्त्री, शूद्र, स्त्री को आदि पाप योनि कहा है। इसलिए हम कह सकते है कि वेदों के युग में शूद्रों, निम्न जातियों, दासों, अस्पृश्यों और स्त्री जाति के लिए नरक समान था।

बुद्ध का हृदय मानवीय भावनाओं और नैतिक मूल्यों से ओत–प्रोत था। इस विकट समस्या के समाधान हेतु उन्होंने उस जड़ को ही काट दिया जिस

पर विष–वेल उत्पन्न होती है। जिससे पूरा वातावरण विषैला हो जाता है। अर्थात् उन्होंने वेदों को, वर्ण व्यवस्था, मोक्ष प्राप्ति को मानने से इंकार कर दिया और बौद्ध दर्शन के अनुसार जन्म अथवा व्यवसाय के आधार पर भेद करना अनुचित है अथवा अप्राकृतिक है। सभी व्यक्ति प्रकृति पुत्र है। इसलिए आपस में भाई–भाई है। बुद्ध धर्म और दर्शन का सर्वोच्च साहस दुःखो की समाप्ति है। यर्थाथ में बुद्ध ने जो मार्ग दिया था, वह अंधविश्वास, अविद्या और अन्य किसी वाद आध्यात्मिक शक्ति द्वारा नियंत्रित नहीं था बल्कि उसका नियंत्रणकर्ता स्वयं मनुष्य है और उसका चित्त है इसलिए बुद्ध ने अपने आपको मार्गदाता कहा है मोक्ष दाता नहीं। इसलिए हम कह सकते है तथागत में सामाजिक न्याय अर्थात स्वतंत्रता समता तथा बन्धुत्व पर अपना सारा जीवन बिता दिया। सामाजिक न्याय तत्कालीन समाज की आवश्यकता थी तथा आज के समाज की भी आवश्यकता है।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. अम्बेडकर भीमराव– भगवान बुद्ध और उनका धर्म (अनु. मदत्त आनन्द कौ. वै.शि.प. श्रवस्ती, 1970)
2. आचार्य, नरेन्द्र देव– बौद्ध धर्म और दर्शन, बिहार राष्ट्रभाषा समिति, पटना, 1954
3. कौशाम्बी धर्मानन्द– भगवान बुद्ध, बम्बई, 1948
4. दापट वी.पी. बौद्धधर्म के 2500 वर्ष दिल्ली, 1956
5. पाण्डेय पि.श. वाराणसी 1956 प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएँ, पटना 1973
6. सिंह परमानन्द– बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, हलधर प्रकाशन, वाराणसी, 1996
7. सिंह मदन मोहन– बुद्धकालीन समाज और धर्म, वि.हि.ए. पटना, 1972
8. जोशी, ओम प्रकाश– भारतीय सामाजिक व्यवस्था, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1985
9. चानना, देवराज– प्राचीन भारत में दास प्रथा, दिल्लीविश्वविद्यालय, 1989
10. शास्त्री प्रो. लक्ष्मी नारायण– भारतीय सामाजिक समस्याएँ, हिन्दी विद्यापीठ देवधर सुक्त, 2010